इसिभासियाइं के कुछ अध्ययनों का भाषाशास्त्रीय विश्लेषण

दीनानाथ शर्मा

शुब्रिंग महोदय द्वारा सम्पादित इसिभासियाइं सूत्र की भाषा का अध्ययन इस लेख का प्रस्तुत विषय है। इस सूत्र की गणना जैन आगम साहित्य के प्राचीन चार ग्रन्थों आचाराङ्ग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन और दशवैकालिक के साथ की जाती है, अतः यह ग्रन्थ एक प्राचीन कृति माना जाता है। आचारांग इत्यादि के उपलब्ध संस्करणों की भाषा के स्वरूप के साथ यदि इस ग्रंथ की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ की प्राकृत शब्दावली में वर्ण-योजना प्राचीन है जबकि अन्य प्राचीन ग्रन्थों में वर्ण-योजना अर्वाचीन है। इस ग्रन्थ में विभक्तियाँ एवं प्रत्यय कुछ सीमा तक अवान्तर काल के उपलब्ध होते हैं, जबकि अन्य प्राचीन आगम ग्रन्थों में प्राचीन काल के मिलते हैं। जिस किसी ऋषि या मुनि ने इसिभासियाइं के सूत्रों का संग्रह किया होगा वह भगवान् महावीर के बाद का ही होगा, इसके अधिकांश अध्ययनों में जो उपोद्घात वाक्य आते हैं वे इस प्रकार हैं :—

"अरहता इसिणा बुइतं" (४२ बार अरहता, ३७ बार बुइतं और ६ बार बुइयं)

जबकि आचाराङ्ग के प्रथम सूत्र का उपोद्घात वाक्य इस प्रकार है :—

"सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं"

इन दोनों वाक्यों में कितना भाषाकीय अन्तर दृष्टिगोचर होता है। प्राकृत भाषाओं के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से इसिभासियाइं का वाक्य प्राचीन रूप लिए हुए है जबकि आचारांग का वाक्य अर्वाचीन रूप लिये हुए है। ऐसा क्यों ?

क्या आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध की रचना इसिभासियाइं के बाद में हुई ? अब हम इसिभासियाइं के कुछ अध्ययनों का भाषाकीय विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं :—

मध्यवर्ती व्यञ्जनों में ध्वनि परिवर्तन

	पार्श्व	गोशालक	वर्धमान
अध्याय	३१	११	२९
यथावत्	६२%	७०%	४५%
घोष	७%	३%	२०%
लोप	३१%	२७%	३५%

इन तीनों अध्ययनों में वर्धमान के अध्ययन में लोप सबसे अधिक और यथावत् स्थिति सबसे कम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ अन्य अध्ययनों में ध्वनि परिवर्तन की स्थिति—

	नारद	वज्जिपुत्त	दविल	पुप्फसाल
अध्याय	१	२	३	५
यथावत्	६१%	८१%	६०%	६९%
घोष	१२%	७%	२२%	४%
लोप	२७%	११%	१८%	२७%

इन सबका औसत निकाला जाय तो यथावत् स्थिति ६० प्रतिशत और लोप की स्थिति लगभग २५ प्रतिशत रहती है।

इसिभासियाइं सूत्र का सम्पादन परमादरणीय जर्मन विद्वान् डॉ० शुब्रिंग महोदय के द्वारा किया गया है उसी ग्रंथ के पाठों का यह भाषाकीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध का सम्पादन भी श्री शुब्रिंग महोदय के हाथों से ही किया गया है, परन्तु उसकी प्राकृत भाषा का स्वरूप ध्वनि परिवर्तन की दृष्टि से बिलकुल विपरीत सा लगता है। आचारांग में लोप ५५ से ६० प्रतिशत है और यथावत् स्थिति २५से३० प्रतिशत। भाषा के इस स्वरूप को देखते हुए आचारांग का संकलन इसिभासियाइं के बाद में हुआ होगा—ऐसा प्रतीत हुए बिना नहीं रहता।

शुब्रिंग महोदय का आचारांग का संस्करण १९१४ई०का है जबकि उनका ही इसिभासियाइं का संस्करण १९४२ ई० (१९७४, अहमदाबाद) का है। अब प्रश्न यह होता है कि यदि इसिभासियाइं प्राचीन है तब तो ध्वनि परिवर्तन की यह स्थिति उचित मालूम होती है परन्तु यदि इसिभासियाइं आचारांग से बाद का है तो समाधान कैसे किया जाय? क्या वर्षों के अनुभव के बाद शुब्रिंग महोदय को ऐसा लगा कि यदि प्राचीन ग्रन्थों की हस्तप्रतों में मध्यवर्ती व्यंजन यथावत् मिलते हों तो उन्हें वैसे ही रखा जाय। क्योंकि आचारांग में उन्होंने मध्यवर्ती व्यंजनों का लगभग सर्वथा लोप कर दिया है। जबकि प्रतों में मध्यवर्ती व्यंजनों की स्थिति अनेक बार यथावत् हो रही है। सबसे अधिक लोप तो मध्यवर्ती 'त' का कर दिया गया है। हो सकता है कि 'त' श्रुति की जो भ्रामक धारणा चल पड़ी थी, उससे वे प्रभावित हुए हों। क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता तो इसिभासियाइं के सम्पादन में यही सिद्धान्त लागू किया होता, परन्तु उसमें मध्यवर्ती 'त' की स्थिति कुछ और ही है।

मध्यवर्ती 'त' की स्थिति

उपरोक्त चार अध्ययनों (१,२,३,५,) में मध्यवर्ती 'त' की स्थिति निम्नवत् पायी जातीहै :

अध्याय	यथावत्	घोष	लोप
१	६८%	०%	३२%
२	१००%	०%	०%
३	८५%	२% (भविदव्वं)	१३%
५	७२%	०%	२८%

जबकि आचारांग (प्रथम श्रुतस्कन्ध) में मध्यवर्ती 'त' का प्रायः सर्वथा लोप कर दिया गया है। आचारांग की उपलब्ध प्रतों और चूर्णि में कितने ही शब्दों में मध्यवर्ती 'त' की जो यथावत् स्थिति मिलती है उसे हमने 'त' श्रुति मानकर उसका लोप कर दिया, जबकि इसिभासियाइं में यह नियम नहीं लगाया गया है। ऐसा क्यों?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसिभासियाइं के कुछ अध्ययनों में मध्यवर्ती 'थ' का 'ध' भी प्राप्त होता है—

अध्याय—२५ तधेव (तथैव), अ०–४० जधा (यथा) अ०–४५ जधा ५ बार, सव्वधा० और तधा

कुछ और प्राचीन प्रयोग :—

अध्याय—१ कड ३ बार, भवति, संवुड २ बार, तवसा १ बार।
अध्याय—११ आणच्चा (आज्ञाय) निराकिच्चा, कुणइ, कारियं (कार्यम्)।
अध्याय—२१ भवति, भवंति, कुरुते, जित्ता (जित्वा)।
अध्याय—३१ नितिय (नित्य) २ बार, पप्प (प्राप्य) किच्चा ३ बार, मड (मृत) संवुड (संवृत), भवति २ बार, भविस्सति २ बार अत्त, (आत्मन्)।

भूतकाल के रूप :—भुविं, णासि ३ बार

अध्याय ३१ में 'नामते' (नामतः) पंचमी एक वचन के लिए प्रयुक्त हुआ है। पंचमी के ऐसे प्रयोग अशोक के पूर्वी शिलालेखों में मिलते हैं।

इस ग्रन्थ में कभी प्राचीन तो कभी अर्वाचीन रूप दोनों ही प्रकार के शब्द प्रयोग मिलते हैं, जैसे—आता (अ० ४४, ४५,) अप्पा (अ० ४१, ४५), आय आया (अ० २५, ४५)।

आत्मन् के ये चार प्रकार के रूप अत्ता, आता, आया और अप्पा प्राकृत भाषा के क्रमशः विकास के साक्षी हैं। अशोक के शिलालेखों में पूर्व में अत्ता मिलता है और पश्चिम में अत्पा मिलता है। अत्ता से आता और आया का विकास हुआ और अत्पा से अप्पा का विकास हुआ जो अलग-अलग काल में विकसित हुए।

कुछ अर्वाचीन प्रयोग जैसे—होति (अ–९) निच्च (अ–९), तवाओ (अ–९), कज्जं (अ० ११) णिच्च (अ० ३१)।

इसिभासियाइं से अव्यय 'न' का प्रायः ण मिलता है। प्रारम्भिक 'न' के लिए अधिकतर 'ण' का प्रयोग हुआ है। मध्यवर्ती 'ज्ञ' के 'ण्ण' का प्रयोग, मध्यवर्ती 'न्न' का 'ण्ण' मिलता है। जबकि शुब्रिंग महोदय के आचारांग के संस्करण में इस प्रवृत्ति के विपरीत दन्त्य 'न' और 'न्न' का ही प्रयोग हुआ है।

शिलालेखीय आधारों से तो ऐसा प्रतीत होता है कि 'न' और 'ज्ञ' के लिए 'ण' और 'ण्ण' का प्रयोग प्राचीन कालीन न होकर अर्वाचीन कालीन है।

इसिभासियाइं में अकारान्त पुलिंग प्रथमा एक वचन के लिए किसी अध्ययन में 'ए' विभक्ति तो किसी में 'ओ' विभक्ति अधिक प्रमाण में मिलती है। सप्तमी एकवचन के लिए 'ए' और 'म्मि' विभक्ति ही मिलती है। उपरोक्त अध्ययनों में कहीं पर भी 'अंसि' 'म्हि' या 'स्सि' विभक्तियाँ सप्तमी के लिए नहीं मिलती हैं जो प्राचीन प्राकृत विभक्तियाँ हैं। 'म्मि' विभक्ति काफी अर्वाचीन है। वर्धमान (अ०-२९) और महाकासव (अ० ९) नामक अध्ययनों में भी 'म्मि' विभक्ति ही मिल रही है। इन विभक्तियों को देखते हुए क्या इसका रचनाकाल परवर्ती अर्थात् आचारांग के बाद का माना जाय?

पासिज्ज (अ०-३१) पार्श्वनाथ के अध्ययन में प्राचीन रूप मिलते हैं। इसमें मध्यवर्ती व्यंजनों के लोप भी कम हैं। प्रथमा एक वचन के 'ए' विभक्ति की बहुलता है और भूतकाल के भविं (१ बार) णासी (३ बार) और आत्मन् के लिए अत्त के प्रयोग प्राचीनता के द्योतक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि सभी अध्ययनों में भाषा का स्वरूप एक समान नहीं है फिर भी मध्यवर्ती ध्वनि परिवर्तन की दृष्टि से इसिभासियाइं की भाषा आचारांग की भाषा से पूर्व की मालूम होती है।

इसिभासियाइं की हस्तप्रतें बहुत कम–एक या दो ही मिली हैं, जिस पर से यह संस्करण तैयार किया गया है, जबकि अर्धमागधी आगमों के प्राचीन ग्रन्थों की विभिन्न कालों की अनेक प्रतें मिलती हैं। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जितनी अधिक मात्रा में और विभिन्न कालों में विविध लेहियों के हाथों से प्रतियाँ बनीं उतनी ही मात्रा में मूलभाषा में विकृति आती गयी। इस प्रवृत्ति के कारण इसिभासियाइं की भाषा में ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी प्राचीनता रह गयी जब कि अन्य प्राचीन आगम ग्रन्थों में मूल शब्द महाराष्ट्री प्राकृत के समान बन गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org